Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

जातीय दंश में बचपन - ओमप्रकाश वाल्मीकि

डॉ. आरती सिंह

सहायक प्रोफेसर, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

भारतीय इतिहास के सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था का विभाजन करते हुए आर्यों ने कभी शायद यह सोचा भी न होगा कि जिन आर्यों और अनार्यों का विभाजन वे अपनी सुविधा और रंगभेद के आधार पर कर रहे हैं, यह व्यवस्था एक दिन इतने कठोर हो जाएंगे कि इन्सान का इन्सान के साथ रहना भी दूभर हो जाएगा। आर्यों ने अपने इस विभाजन के अंतर्गत यह व्यवस्था रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कार्य-पद्धति, रुचि और मनःस्थिति के अनुसार वर्ण परिवर्तन कर सकता था। लेकिन व्यक्ति की एक खास प्रवृत्ति होती है कि वह व्यक्तियों पर शासन करे, उन्हें अपने आधीन रखे और स्वयं सर्वे-सर्वा बन कर रहे। शायद यही कारण रहा होगा कि जिस व्यवस्था को उन्होंने परिवर्तनशील और मनःस्थिति के अनुरूप सोचा था वह समय के साथ अत्यन्त कठोर सामाजिकता का रूप धारण कर बैठी और कालान्तर में यह विभाजन रंग-भेद तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि एक कठोर अभिशाप बन गया। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' जातिगत उत्पीडऩ और अतिदलित समाज व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों आदि के खिलाफ संघर्ष का आख्यान है । यह सिर्फ आत्मकथा ही नहीं वरन अतीत की मानवीय संवेदनाओं को तार-तार करती हुई वीभत्स घटनाओं और पीड़ादायी अनुभवों से उपजी कराह है, वेदना है, जहां लेखक ही नहीं बल्कि समय-समाज भी उपस्थित है - यातनामय भयावहता के साथ । इस शोध पत्र में जूठन के माध्यम से जातीय दंश को विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

बीज शब्द : जातीय दंश, जूठन, आत्मकथा, भारतीय समाज, वर्णव्यवस्था ।

उत्तरवैदिक काल के परवर्ती युग तक आते-आते वर्ण व्यवस्था में और विभाजन हुए। अब आर्य और अनार्य (दास) के स्थान पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का प्रयोग किया जाने लगा। अनार्य या दास वर्ण को सीधे-सीधे शूद्र नामक चतुर्थ वर्ण के अंतर्गत रखा गया। उस समय इन चारों वर्णों के बीच पारस्परिक संबंध स्थापित थे। निश्चय ही ये संबंध अंतर्जातीय विवाह के कारण थे जिसके परिणामस्वरूप अनेक आर्यों ने अपने मूल अस्तित्व को ही खो दिया तथा अपनी मौलिकता और निजत्व को बनाये रखने में असमर्थ हो गये जिसके परिणामस्वरूप इनमें वे वर्गगत तथा रक्तगत संकरता का विस्तार हो गया तथा विजातीयता का भी लोप हो अ गया। (प्राचीन भारत का सामाजिक

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

इतिहास. पृ. 53)। इन समाज सुधारकों का जब वर्ण विभाजन से भी संतुष्टि नहीं मिली तो इन्होंने इसे दैवीय रूप दे दिया और तर्क दिया कि वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई है। उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जाँघ से वैश्य तथा पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। वर्ण व्यवस्था को ईश्वरीय भय दिखाकर अपने आधीन रखा ताकि उनका आपस मे विलय न हो।

हिन्दू जाति में अगर हम चार वर्णों की बात करें तो भंगी (वाल्मीकि) जाति का कहीं स्थान ही नहीं आता। बकौल वाल्मीकि ये कभी अपने आप को हिन्दू मानते ही नहीं थे क्योंकि वे हिन्दू नहीं थे वे अस्पृश्य, अछूत, अंत्यज अति शूद्र थे। उन्होंने जूठन में कई बार हिन्दुओं जैसा शब्द का प्रयोग किया "बरला गांव में कुछ मुसलमान त्यागी भी थे। त्यागियों को भी तगा कहते थे। मुसलमान तगाओं का व्यवहार भी हिंदुओं जैसा ही था। (जूठन ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 13) आगे वे लिखते हैं कि हमारे समाज में कुछ भी हिन्दुओं जैसा नहीं था न रीति-रिवाज न धर्म न देवी देवता और न ही क्रिया-कलाप जूठन में इस बात की पुष्टि होती है। "कहने को तो बस्ती के सभी लोग हिन्दू थे, लेकिन किसी हिन्दू देवी-देवता को पूजा नहीं करते थे। जन्माष्टमी पर कृष्ण की नहीं, जहारपीर की पूजा होती थी या फिर पौन पूजे जाते थे। वे सभी अष्टमी को नहीं, नवमी के ब्रह्ममूहर्त में इसी प्रकार दीपावली पर लक्ष्मी का पूजन नहीं, माई मदारन के नाम पर सुअर का बच्चा चढ़ाया जाता है या फिर कड़ाही को जाती है। कड़ाही यानी हलवा-पूरी का भोग लगाया जाता है।" (जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 53)

'जूठन' सिर्फ ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा नहीं अपितु सम्पूर्ण दलित समाज का भोगा हुआ कटु यथार्थ है, जहां जाति व्यवस्था की खतरनाक खाई है और वहां से आने वाली दर्दनाक चीखें हैं । पढ़ते समय लगता है कि 'जूठन' आह, अंतर्मन से उपजा हुआ आख्यान है । इसमें वर्णित घटनाएं और प्रसंग वर्णव्यवस्था के पोषकों की निमर्मता के प्रमाण हैं । जातिगत व्यवस्था लेखक का पीछा नहीं छोड़ती । गाँव के सरकारी प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश के समय बालक ओमप्रकाश वाल्मीकि को तरह-तरह से परेशान किया जाता है । शिक्षक द्रोणाचार्य की भूमिका में हैं, तो सहपाठी अर्जुन-भीम की तरह तीर-कमान साधे हुए हैं । प्रवेश परीक्षा अग्निपरीक्षा से कम नहीं है । तीन दिन तक लगातार झाड़ू लगवाया जाता है किंतु कक्षा में बैठने का मौका एक दिन भी नहीं मिलता । यहाँ शिक्षा सिर्फ और सिर्फ किसी की जागीर बनकर रह गई है । कुछ विशेष जाति के लोगों को ही शिक्षा दी जाती थी । दलित जीवन के भुक्तभोगी रचनाकार को जब शिक्षा के मंदिर कहे जाने वाले विद्यालयों से उपेक्षा मिली, तिरस्कार और अपमानजनक शब्दों को सहने के लिए विवश होना पड़ा तो इनके मानस में आरम्भ से ही उच्च कही जाने वाली जातियों के प्रति वितृष्णा का भाव भरता चला गया ।

सामाजिक जीवन की विसंगतियों का असर किसी भी व्यक्ति के पूरे जीवन को प्रभावित करता है। अतीत की स्मृतियाँ याद आते ही जिन्दगी कटुता से भर जाती है। व्यक्ति को सहज होने में समय लगता है। जिस बालपन की जिस उम्र में बच्चों को स्कूल जाना चाहिए। किस्से कहानी व कल्पना की दुनियाँ रचनी चाहिए, उन कर बच्चों को गंदगी साफ करने, बेगार करने, मे मवेशी चराने आदि कार्यों में अपने बचपन को समाप्त करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें स्कूल में दाखिला नहीं देते और देते भी हैं तो उनसे दोअम दर्जे का व्यवहार करते कि हैं। उन्हें स्कूल में पढ़ाने की बजाय उनसे स्कूल की सफाई कराई जाती है और विरोध करने पर बात-बात में जातिसूचक शब्दों का प्रयोग, गाली-गलौंच किया जाता है। और यह कहा जाता है कि तुम पढ़-लिख कर क्या करोगे आदि कहकर अपमान किया जाता। ओमप्रकाश जी कहते हैं कि पिताजी चाहते थे कि मैं पढूँ और अपनी जात सुधारू इसलिए वे मुझे प्राईमरी स्कूल ले गये और मास्टर हरफूल सिंह के सामने गिड़गिड़ाये और कहा "मास्टर थारी मेहबानी हो जाएगी जो म्हारे जातक वूफ बी दो अक्षर सिखा दागे।" (जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पू. 12) इसके बाद पिताजी कई दिनों तक स्कूल के चक्कर काटते रहे और अंत में एक दिन दाखिला मिल गया, दाखिला लेने से ही जिन्दगी का संघर्ष खत्म नहीं हो जाता संघर्ष तो यहाँ से शुरू होता है। प्राईमरी स्कूल में मुझे दूसरे बच्चों से दूर बैठाया जाता था, दरवाजे के पास जहाँ से बोर्ड पर लिखे अक्षर धुंधले दिखते थे त्यागियों के बच्चे चुहड़े का कहकर चिढ़ाते थे और बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। पानी पीने के लिए हैंडपंप छूने का अधिकार नहीं था। लड़के तो पीटते ही थे मास्टर लोग भी छूने पर सजा देते थे। मेरा स्कूल छुड़ाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाये जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर चला जाऊँ और मैं भी उन्हीं कामों में लग जाऊँ जिसके लिए मेरा जन्म हुआ है। भगत सिंह अपने लेख 'अछूत समस्या' में लिखते हैं "कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इन्कार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की मांग करे? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते तो हो तुम अधिक राजनैतिक अधिकार मांगने के कैसे अधिकारी बन गये? (जाति-धर्म के झगड़े छोड़े सही लड़ाई से नाता जोड़ो) भगत सिंह, पृ. 14)

ओमप्रकाश वाल्मीकी जी ने अपनी आत्मकथा में बताया कि उनका जीवन बचपन से ही अभावग्रस्त था। उन के घर का प्रत्येक सदस्य कुछ न कुछ कार्य करता था। तगाओं के घर से लेकर खेती-बाड़ी मेहनत-मजदूरी सभी कार्य होते थे। कभी-कभी रात में भी बेगार करनी पड़ती थी, जिसके बदले में पैसा या अनाज नहीं मिलता था। इतना करने के बाबजूद भी दो वक्त की रोटी ठीक से नहीं मिल पाती थी। कोई तगा कभी नाम लेकर उन्हे नहीं पुकारते थे। वे लोग नाम तक लेना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। यदि उम्र में बड़ा हो तो, ओ चूहड़े, बराबर या उम्र में छोटा होता तो अबे चूहड़े के यही सम्बोधन करते थे।

जूठन समाज का एक कड़वा सच सामने लाता है । इस किताब में न जाने ऐसी ही कितनी घटनाओं का ज़िक्र है कि आपको पढ़ते हुए समाज के जाति-धर्म के नाम पर होने वाले भेदभाव से बेचैनी का अनुभव होगा । किसी भी तबके से आते हो आखिर इंसान तो इंसान ही है । शायद अब इस तरह का भेदभाव उतना नहीं होता होगा लेकिन फिर भी पूरी तरह से ख़त्म हो गया ये कहा नहीं जा सकता । क्यूंकि किसी न किसी रूप में ये असलियत हमारे-आपके सामने आ ही जाती है । मुझे तो नहीं लगता कि हममें से कोई भी ऐसा होगा जिसने इस भेदभाव को साक्षात् नहीं देखा होगा या इसका हिस्सा नहीं रहा होगा । आप किसी भी ओर हो सकते हैं । भेदभाव करने वाले की ओर या सहने वाले की ओर । भले ही आप इस भेदभाव से आहत हुए हों लेकिन अगर आपने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ न उठाई हो तो आप इसका हिस्सा ही कहलायेंगे ।

शिक्षक का कर्म बच्चों को पढ़ाना होता है वह भी बिना किसी भेदभाव के। कबीर तो गुरू को ईश्वर से भी पहला स्थान देते है उसे ही ज्ञान बांटने वाला, सच्चाई के मार्ग पर चलने वाला तथा पथप्रदर्शक माना जाता है। लेकिन जब शिक्षक ही विद्यार्थियों के साथ भेदभाव करे और जातिसूचक शब्दों का प्रयोग करे और गाली-गलौंच से बात करे तो एक मासूम बच्चे के मानसिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा। जिस स्कूल में ज्ञान की बाते सिखाई जाती है, एक साथ मिलकर आगे बढ़ना और पढ़ना सिखाया जाता है उस स्कूल में वाल्मीकि को झाड़ू थमाई और सफाई करने का आदेश दे दिया। कई दिनों तक कक्षा में बैठकर पढ़ने नहीं दिया गया। सुबह से शाम तक स्कूल को शीशे की तरह चमकाने में ही लगे रहे।

बेगार करने में ओमप्रकाश ही मात्र नहीं थे उनका सारा परिवार तथा समुदाय का हर व्यक्ति सुबह से शाम तक मजदूरी करते थे पर बदले में संतोषपूर्ण मजदूरी नहीं दी जाती, जिससे आसानी से गृहस्थी चलाई जा सके। उसके ऊपर से बाते सुननी पड़ती थी वो अलग। दिन भर कमरतोड़ मेहनत के बावजूद जूठन के लिए भी दुत्कार, तिरस्कार मिले इससे ज्यादा अपमान और क्या हो सकता है लेकिन फिर भी जिन्दगी से कोई शिकायत नहीं, पश्चाताप नहीं लेकिन फिर भी लोगों की सहानुभूति के स्थान पर घृणा ही मिली। ओमप्रकाश जी कहते हैं कि "बारात के खाना खा चुकने पर झूठी पतले उन ठोकरों में डाल दी जाती थी जिन्हें घर ले जाकर वे झूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछे खिल जाती थी। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। (जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 19) भगत सिंह ने अपने लेख 'अछूत समस्या में कहा है कि "हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है। लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर क्रांति के लिए

कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस शोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जाएगा? वे वेद शास्त्र पढ़ने के अधिकारी है अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सूलक नहीं होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रेजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?" (जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो सही लड़ाई से नाता जोड़ो, भगत सिंह, पृ. 14)

इंटर कॉलेज जाने के लिए किताबें एक सपना थी क्योंकि दो टूक की रोटी नसीब नहीं हो रही थी तो पढ़ाई कैसे सम्भव थी। पर माँ ने बड़ी कठिनाई से इंटर स्कूल में जाने की व्यवस्था की थी। इंटर-कॉलेज तक हमारे मुहल्ले को एक दो बच्चे ही पहुँचे कुछ तो पहुँचकर भी आगे की पढ़ाई पूरी नहीं कर सके। पर यहाँ के हालात प्राईमरी स्कूल से बेहतर थे लेकिन फिर भी मुझे सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेने दिया जाता, मात्र दर्शक बन कर ही रहना पड़ता। इस तरह हमें हीनता और अस्पृश्य होने का एहसास कराया जाता ताकि हम विकास पथ पर आगे न बढ़ सके और स्वर्ण की बराबरी न कर सके। बकौल वाल्मीकि "दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव दग्ध है। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्ति में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने सांसे ली है जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी।" (जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, भूमिका)

निष्कर्ष :

'जूठन' आत्मकथा ने आधुनिक दलित साहित्य को सम्मृद्ध बनाने एवं दलित जीवन की यथार्थ को समाज के सामने प्रस्तुत करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'जूठन' आत्मकथा में दलित जीवन की अभिव्यक्ति स्वतः ही दिखाई देती है । विसंगतियों भरा बचपन लेकन वे प्राईमरी स्कूल से इंटर स्कूल में प्रवेश कर गये पर जिन्दगी के संघर्ष कम नहीं हुए। जीवन के ये संघर्ष कुछ सिखाते नहीं बल्कि व्यक्ति को कमजोर करते हैं। समाज से काटते हैं, समाज के प्रति नफरत पैदा करते है और ये नफरत उसके कच्चे, नाजुक मन पर एक गहरी लकीर खींच देते हैं जो जन्मों तक मिटाये नहीं मिटती।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **जाति-धर्म के झगडे छोड़ों सही लड़ाई से नाता जोड़ो, भगत सिंह, परिकल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2004**
2. **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1992**
3. **जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013**